ओ३म्

सत्यापन क्रमांक :
RAJHIN/2015/60530

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश

हिन्दी मासिक

वर्ष : ६ अंक : १ १ जनवरी २०२३ जोधपुर (राज.) पृ.:३६ मूल्य १५० र वार्षिक

जिन करके शरीर और आत्मा सुसंस्कृत होने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त हो सकते हैं और सन्तान अत्यन्त योग्य होते हैं। इसलिये संस्कारों का करना सब मनुष्यों को अति उचित है।... मनुष्यों के शरीर और आत्मा के उत्तम होने के लिये निषेक अर्थात् गर्भाधन से लेके श्मशानान्त अर्थात् अन्त्येष्टि-मृत्यु के पश्चात्मृतक शरीर का विधिपूर्वक दाह करने पर्यन्त सोलह संस्कार होते हैं । शरीर का आरम्भ गर्भाधान और शरीर का अन्त भस्म कर देनेतक सोलह प्रकार के उत्तम संस्कार करने होते हैं। :महर्षि दयानंद

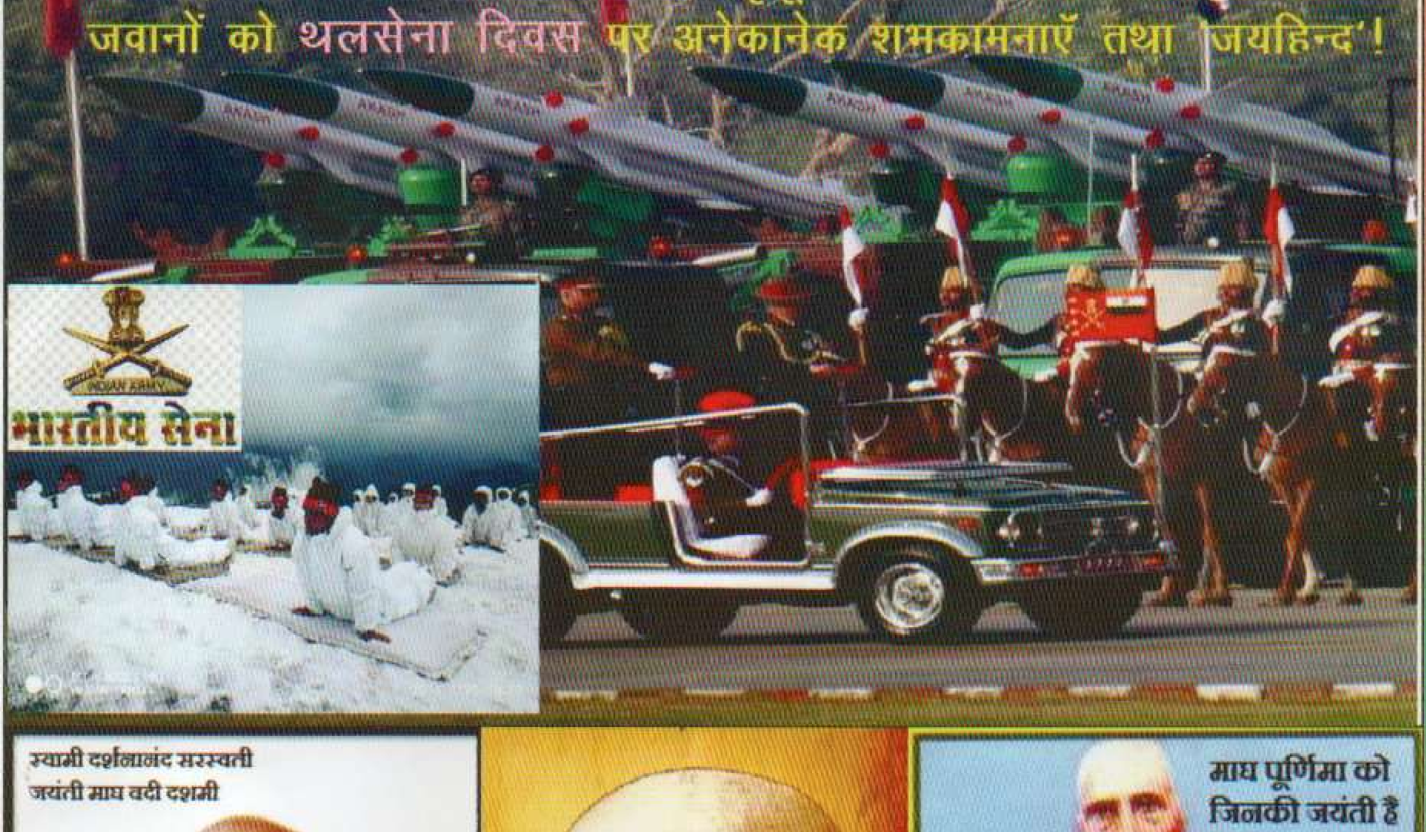
अपने अदम्य साहस और शौर्य से मातृभूमि की सेवा करने वाले हमारे वीर जवानों को थलसेना दिवस पर अनेकानेक शुभकामनाएँ तथा 'जयहिन्द'!
भारतीय सेना

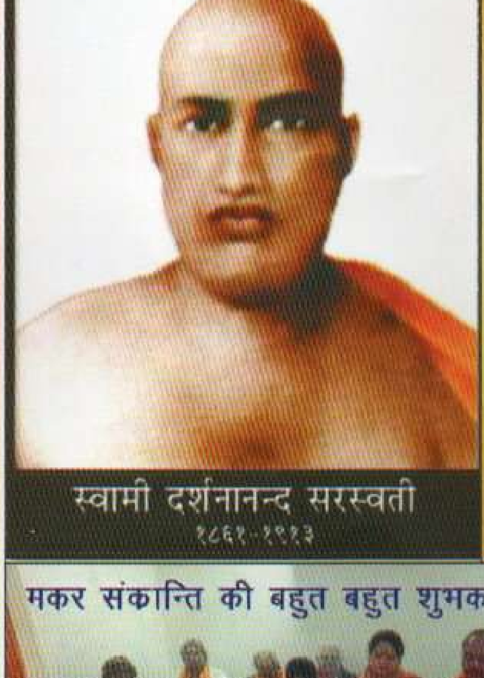
स्वामी दर्शनानंद सरस्वती
जयंती माघ वदी दशमी
स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती
१८६१-१९१३

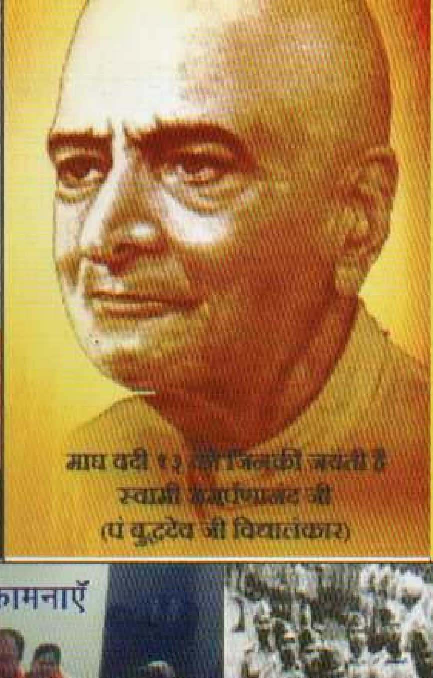
माघ वदी १३ को जिनकी जयंती है
स्वामी समर्पणानन्द जी
(पं बुद्धदेव जी विद्यालंकार)

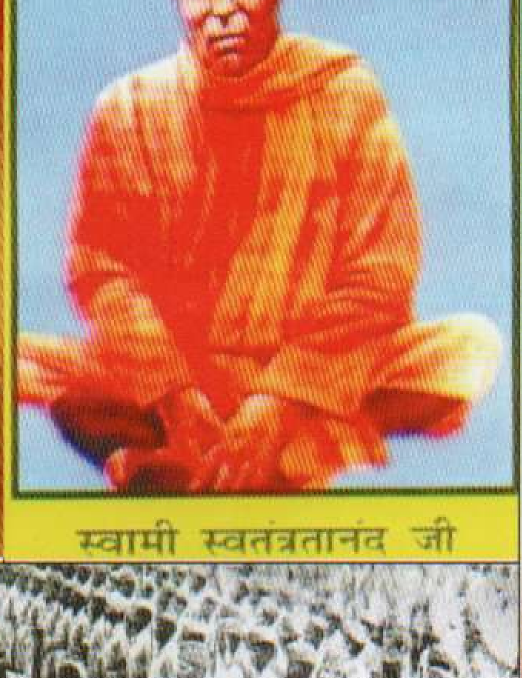
माघ पूर्णिमा को
जिनकी जयंती है
स्वामी स्वतंत्रतानंद जी

मकर संकान्ति की बहुत बहुत शुभकामनाएँ

सुभाष
जयन्ती
२३ मार्च

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् । -ऋग्वेद ९।६३।५

सबको श्रेष्ठ बनाओ

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश का मुख्य प्रयोजन

महर्षि दयानन्द सरस्वती के व्यक्तित्व, कृतित्व, व उनके द्वारा लिखित समस्त साहित्य तथा उनके सार्वभौमिक अद्वितीय कार्यों व सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार, स्थापना व व्यवहार में साकार करने के लिये कार्य करना ।

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जोधपुर का मुखपत्र

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश

वर्ष : ६ अंक : १

दयानन्दाब्द : -१६६

विक्रमसंवत् : माह-माघ २०७६

कलि संवत् ५१२२

सृष्टि संवत् :१,६६,०८,५३,१२३

सम्पादक मण्डल :

प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु, अबोहर

डॉ. सुरेन्द्रकुमार, हरिद्वार

डॉ. वेदपालजी, मेरठ

पं. रामनारायण शास्त्री, सिरोही

आचार्या सूर्यादेवी चतुर्वेदा

कार्यवाहक सम्पादक :

कमल किशोर आर्य

Email: sampadakmdsprakash@gmail.com

9460649055

प्रकाशक : 0291-2516655

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जसवन्त कॉलेज के पास, जोधपुर ३४२००१

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है । किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्याय क्षेत्र जोधपुर ही होगा ।

Web.-www.dayanadsmritinyas.org.

वार्षिक शुल्क :१५० रुपये

आजीवन शुल्क : ११०० रुपये (१५वर्ष)

अनुक्रमणिका

क्या	कहाँ
१. सम्पादकीय	४
२. वेद-वचन	६
३. मुक्ति-सोपान	८
४. हम तुझे, तू हमें...	११
५. महर्षि जीवन...	१२
६. दयानन्द कौन....	१७
७. हीरक जयन्ती सम्मपन्न..	२४
८. आर्यसमाज का इतिहास..	२७
९. श्रद्धानन्द बलिदान दिवस...	३०
१०. एक प्रहर का शिविर....	३२

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास

बैंक ऑफ बडौदा खाता संख्या-01360100028646

IFSC BARB0JODHPU

यह पांचवा अक्षर जीरो है

चुनाव परिणामों के निहितार्थ

गुजरात में भाजपा ने पिछले सारे रिकॉर्ड तोड़ते हुए १५६ विधानसभा सीटें जीतकर नया इतिहास रच दिया, वहीं हिमाचल में कांग्रेस ने ६८ में से ४0 सीटें जीतकर मानो संजीवनी बूटी प्राप्त कर ली। उधर दिल्ली एमसीडी के चुनावों में आम आदमी पार्टी ने अपना परचम लहराया है। भाजपा के सामने हिमाचल और दिल्ली एमसीडी के उदाहरण रख लो तो गुजरात की जीत परिभाषित करने में भाजपा के राष्ट्रीयता के जुमले के साथ समस्या हो जाएगी। आम आदमी पार्टी के राष्ट्रीय पार्टी बनने के स्वप्न पर गुजरात में तो प्रश्न चिह्न लगा ही, उसके प्रमुख गढ़ चंडीगढ़ से सटे हिमाचल प्रदेश में भी पाला पड़ गया!

जहाँ तक कांग्रेस की बात है, कांग्रेस ने गुजरात में अपने बड़े नेताओं को नहीं उतारा। वैसे भी राहुल को तो कांग्रेस को हराने वाला नेता माना जाता है। नहीं भी गए तो क्या फर्क पड़ा? हॉ हिमाचल में कांग्रेस की जो जीत हुई उसे क्या मानेंगे? वहां भी तो बड़े नेता नहीं गए? यदि सत्ता के विरुद्ध रुझान मानें तो इस रुझान के पैदा होने के कारण भी सामने आने चाहिए। कुशासन की सच्चाई से बचने के लिएसत्ता के विरुद्ध रुझान का बहाना किया जाता है। इन चुनावों में जो सच्चे निष्कर्ष निकलते हैं वे राष्ट्र के लिए सही नहीं है। यदि बांगला क्षेत्रवादी ममताजी को विजेता बनाने पर बुरा लगता है तो गुजराती क्षेत्रवाद अच्छा किस कारण से हो सकता है। यदि भाजपा गुजराती अस्मिता के आधार पर नहीं जीतकर गुजरात में राष्ट्रीय अस्मिता के दम पर जीती है तो हिमाचल और दिल्लीवासी क्या राष्ट्रद्रोही है? भाजपा के राष्ट्रीय चरित्र और चिंतन को दिल्ली एमसीडी और हिमाचल के चुनाव में निश्चित रूप से धक्का लगा है। जब इस राष्ट्र को अपना राष्ट्र मानने वाले लोग भाजपा को वोट नहीं देते हैं तो भाजपा को समझना चाहिए की हिंदुत्व को खतरा, पाकिस्तान के विरुद्ध सख्त रुख, भारत की सेनाओं को मजबूत बनाने के साथ ही साथ आम जनता को सुशासन का परिणाम भी मिलना बहुत आवश्यक है। कॉर्पोरेट गवर्नेस से कुछलोगों को और पार्टी को भी चुनाव लड़ने (वस्तुतः मतदाता खरीदने को) धन अवश्य मिलेगा। किन्तु यह 'शॉर्ट कट' 'शॉर्ट लाइफ' ही होगा। मेरी चिंता तो यह है कि हिन्दुत्व के नाम पर वोट देने वाली जनता जब हिन्दुत्व के नाम पर शोषण और कुशासन से उकता गई तो हिन्दुओं का क्या होगा?किन्तु सत्ता का मद अपनी आय देखता है, पीड़ितों के आराम से उसे कोई मतलब नहीं होता। परमात्मा भाजपा को इस सोच से बचाकर रखे।

अपराधियों का बोलबाला

यह सुनिश्चित बात है कि देश में सरकारी निम्नस्तरीय पदों को निरंतर समाप्त किया जा रहा है और अधिकारियों के पद कई गुना हो चुके हैं। मानो सरकारी अधिकारियों में कर्मचारियों से कार्य लेने की योग्यता ही नहीं रह गई हो और कम लागत में कार्य कराने की योग्यता ठेकेदारों में ही आ गई हों। जब नियंत्रित कर्मचारियों की संख्या कम हो रही है तो नियंत्रक अधिकारियों की बढ़ना असंगत ही है।

सारे काम ठेके पर दिए जाते हैं–जिसका वास्तविक कारण मात्र कमीशन है। सरकारी कर्मचारी सरकारी अधिकारियों को कमीशन नहीं देते और सरकारी अधिकारियों द्वारा कर्मचारियों से सरकारी व्यय पर बेगारी लेने के कारण यह अधिकारी यूनियनबाजी के नाम पर की जा रही घोटालेबाजी को भी रोकने में सक्षम नहीं है, क्योंकि खुद भी मजदूरों का शोषण करते हैं। सरकारी कर्मचारियों के बंगलों पर अनेकों कर्मचारियों का मिलना आम बात है। ऐसे भ्रष्ट और शोषणकर्ता अधिकारियों और नेताओं के चलते सुशासन कभी नहीं आ सकता। विकास के नाम पर मात्र मशीनीकरण और औद्योगिकरण समाज में बेरोजगारी बढ़ा रहे हैं और इसी के फलस्वरूप अपराध बढ़ते जा रहे हैं।इसमें भी विशेष बात यह है कि हजार और लाख रुपए की चोरी करने वाला तो जेल चला जाता है। किंतु जनता के धन की करोड़ों और अरबों रुपए की चोरी करने वाले अधिकारी और नेता अपवाद के रूप में ही जेल जाते हैं और जेल जाने के बाद भी कुछ समय पश्चात अपने पदों पर पुनः दिखाई देने लगते हैं मानो ये सब दूध के धुले हुए हों।

भ्रष्टाचारियों और अपराधियों के साथ शासन और सत्ता के ही नहीं न्यायपालिका के गठजोड़ ने भी जनता को बेचारा बना दिया है और संगठित अपराधियों को सत्ता और शासन से भी मजबूत, इतना मजबूत कि राजस्थान का एक राजनेता एक गिरोह के मुखिया को अपना बंगला बेचने को 'बाध्य' होता है।

इनका गठजोड़ इतना भयानक है कि इन अपराधियों को जेल सबसे सुरक्षित ठिकाना लगता है जहॉं से वे अपने अपराधों को संचालित करते हैं और लोगों को पीड़ा पहुॅचाते हैं। आश्चर्य यह है कि किसी अति महत्वपूर्ण व्यक्ति की तरह हथियारबंद कमांडो और सुरक्षाकर्मियों से घिरे ये लोग पेशी पर जाते हैं और अपने प्रभुत्व के लिए विरोधी गिरोह से हुई दुश्मनी के परिणाम स्वरूप हुए अपनी जान के खतरे के लिए सरकार से भी सुरक्षा की मांग करते ही हैं, निजी सुरक्षा एजेंसियों से हथियार बंद सुरक्षाकर्मी भी साथ रखते हैं।

अपराधियों को निजी आग्नेयास्त्र युक्त सुरक्षाकर्मी रखने की अनुमति मिल जाती है–यह अपराधियों के प्रति देश और राज्यों की नीति पर बहुत बड़ा प्रश्न चिन्ह है! बलात्कारियों को जमानत मिल जाती है और वे पीड़ित (बलात्कृत) नारी और उसके परिवारों को धमकियां देते हैं और मार भी डालते हैं। अखबारों में आता है कि किसी आपराधिक घटना के लिए जिस अपराधी या जिन अपराधियों को पकड़ा जाता है उनके विरुद्ध पहले से दहाई की संख्या तक मुकदमे दर्ज है। यह कैसा कानून है कि बार–बार घटनाओं को दोहराने वाले अपराधियों को जमानत मिल जाती है! क्या आम जनता की सुरक्षा कोई मायने नहीं रखती? क्या ऐसे अपराधियों द्वारा पूर्व में कारित अपराधों से उन्हें उन्मोचित किया जा चुका होता है? आदतन अपराधियों का खुले घूमना और पुनः अपराध करना अस्वीकार्य है। जिस परिवार ने आदतन अपराधियों की जमानत का पैसा दिया, जिन वकीलों ने उसका केस लड़ कर जमानत दिलवाई और जिन न्यायाधीशों ने जमानत दी–क्या उनकी नैतिक जिम्मेदारी नहीं होती है? यदि न्यायाधीश स्वयं को लिखित कानून से बंधा हुआ बंधुआ मजदूर अनुभव करता है तो कितने न्यायाधीश ऐसे होंगे जिन्होंने स्वयं दुखी होकर यह बात अपने निर्णय में लिखी हो और इस व्यवस्था में परिवर्तन करने के लिए या तो पहल की हो या प्रस्ताव किया हो!

–कमल

वेद-वचन

तीन देवियाँ

इळत्सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः ।
बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ।। ऋग्वेद-५।५।८।

पदार्थः- हे मनुष्यो ! जैसे **(अस्त्रिधः)** नहीं नाश करने वाला **(इळा)** प्रशंसित विद्या **(सरस्वती)** वाणी **(मही)** भूमि **(मयोभुवः)** सुख को कराने वाली **(तिस्रः)** तीन **(देवीः)** श्रेष्ठ गुणवती **(बर्हिः)** उत्तम गृहाश्रम को **(सीदन्तु)** प्राप्त हों, वैसे ही आप लोग भी प्राप्त होओ ।

भावार्थः- हे स्त्री और पुरुषो ! आप लोग विद्या, उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी और भूमि के राज्य को सुख के लिए प्राप्त हूजिए । वेद विद्या से प्रशंस्ति प्रभावी वाणी और विस्तृत भूमि सुख कराने वाली होती हैं । गृहस्थ स्त्री पुरुषों को भी इन तीनों की (वेद विद्या, प्रभावी वाणी व भूमि की) प्राप्ति हेतु सदैव प्रयत्न करना चाहिए ।

दुष्ट-संहार

अग्निवृत्राणि जङ्धनद् द्रविणस्युर्विपन्यया ।
समिद्धः शुक्र आहुतः ।। यजुर्वेद-३३।९

पदार्थः-हे विद्वन् ! जैसे **(समिद्धः)** सम्यक् प्रदीप्त **(शुक्रः)** शीघ्रकारी **(अग्निः)** सूर्यादिरूप अग्नि **(वृत्राणि)** मेघ केअवयवों को **(जंधनत्)** शीघ्र हटाता है, वैसे **(द्रविणस्युः)** अपने लिए धन चाहनेवाले द्वारा **(आहुतः)** बुलाये हुए आप **(विपन्यया)** विशेष व्यवहार की युक्ति से दुष्टों को शीघ्र मारिए ।

भावार्थः- इस मन्त्र में वाचकलुप्तापमा अलङ्कार है । जैसे सूर्य मेघ को ताड़ना देता है। वैसे ही व्यवहार का जाननेवाला पुरूष धन पाके, सत्कार को प्राप्त होकर दोषों को नष्ट करता है,

औषधसे व्याधियाँ, नष्ट करें ।

आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं
भेषजा करत् ।। सामवेद १११२।।

पदार्थः- **(इन्द्रः)** परमेश्वर सर्वशक्तिमान् **(आदित्यैः)** सूर्य-किरणों और **(मरुद्भिः)** विविध वायुओं के **(सगणः)** गण-सहित **(अस्मभ्यम्)** हमारे लिए **(भेषजा)** औषधें **(करत्)** करे।

भावार्थः- यह तो प्रसिद्ध ही है कि सूर्य की किरणों और वायु से ही अनेक औषध उत्पन्न होते हैं जिनसे हमारे देह, सन्तान आदि उत्पन्न और रक्षित होते हैं और अब तो सूर्य-किरणादि से ही साक्षात् अनेक रोगों के दूर करने की रीति पर चिकित्सा होने लगी है, तब कहना ही क्या शेष है! परमात्मा अपने बनाए साधनों से तथा विद्वान् वैद्य अपने सुयोग्य शिष्यों के साथ मिलकर प्रकृति से प्राप्त औषध से हमारी व्यधियों का हरण करें ।

सम्राज्ञी

सम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु सम्राज्ञ्युत देवृषु।
ननान्दुः सम्राज्ञ्येधि सम्राज्ञ्युत श्वश्रवाः ।।अथर्व १४।१।४४।।३८३५।

पदार्थः- हे वधू! **(श्वशुरेषु)** अपने ससुर आदि- मेरे पिता आदि गुरुजनों के बीच **(सम्राज्ञी)** राजराजेश्वरी, **(उत)**और देवृषु अपने देवरों मेरे बड़े और छोटे भाइयों के बीच **(सम्राज्ञी)** राजराजेश्वरी **(एधि)** हो, **(ननान्दुः)** अपनी ननद-मेरी बहिन की **(सम्राज्ञी)** राजराजेश्वरी **(उत)** और **(श्वश्वाः)** अपनी सासु- मेरी माता की **(सम्राज्ञी)** राजराजेश्वरी **(एधि)** हो।

भावार्थः- वधू विद्या और बुद्धि के बल से अपने कर्त्तव्यों में ऐसी चतुर हो कि ससुर, सासु, देवर, ननद आदि सब बड़े- छोटे जन उसकी बड़ी प्रतिष्ठा करें। ऐसा तभी हो सकता हैं जब वधू पतिगृह में सबके सम्मान और अनुशासन की सुनिश्चित करते हुए ऐसा व्यवहार करें कि पतिकुल के प्रत्येक सदस्य को अपने और अन्य सदस्यों के साथ वधू द्वारा किया जा रहा व्यवहार उत्तम और हितकारी अनुभव हो ।

मुक्ति- सोपान -स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज

जातीय आत्म-विचार की आवश्यकता

आत्म विचार की आवश्यकता- व्यक्तियोंको ही नहीं मनुष्य समाजों और जातियों को भी है। मैं अभी न्यूयार्क (अमेरिका) का एक मासिक पत्र पढ़ रहा था । उसमें अंगहीन सन्तान उत्पन्न करने से बचने के विषय का एक लेख देखा। लेखक ने नित्कांसिन यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर गुयर (Professor M.F. Guyor) की पुस्तक 'Being well Born' में से उद्धरण देकर सिद्ध किया है कि अंग हीनों के विवाह से संसार में बहुत सी आपत्तियां फैलती हैं। प्रौफेसर गुयर की सम्मति है कि अंग हीनों का विवाह ही न होना चाहिए। यदि ऐसा न हो सके तो दो समान अंग हीनों का विवाह तो सर्वथा ही त्याज्य है। वह लिखते है कि गूंगे बहिरे यह दोष पैतृक दाय में ही प्राप्त करते है और इस प्रकार समान दोष वालों का विवाह उनके सन्तानों को दोष युक्त कर संसार में दु:ख का बढ़ाने वाला होता है। उन की सम्मति में जो गूंगे बहिरों के शिक्षणालय है उनसे बड़ी हानि हो रही है। समान अंग विहीन स्त्री पुरुष जब परस्पर मिलते हैं तो सम्भावत: (अन्य सम्बन्ध न मिलने पर)उनका आपस में सम्बन्ध हो जाता है जिससे बहुत ही दु:ख दाई परिणाम निकलते है। इसलिए प्रोफेसर महोदय ने इस विषय पर पुस्तक लिखा है ताकि 'विवाह' विषय पर ठीक प्रकाश पड़कर यथार्थ ज्ञान फैलने से अयोग्य पुरुष इस विवाह रुपी विशेष पवित्र सम्बन्ध से बचें।

मालूम होता है कि अमेरिका जैसे स्वतंत्रता प्रिय और जागृत देश में भी सर्वसाधारण अयोग्यों के रोकने में प्रवृत्त नहीं होते इसीलिए प्रोफेसर गुयर लिखते हैं-"हम अपने अगड़दत्त उत्तम कोटि के मनुष्यों को सहस्त्रों की संख्या में कटवा ने के लिए युद्धक्षेत्र में भेजने से संकोच नहीं करते जब हमारे उस बहमी विचार का अपमान होतो है जिसे जातीय सम्मान कहते है, परन्तु हम इस दैव दुर्वियोग को सर्वथा भूल जाते हैं, जब अयोग्य पुरुषों को सन्तानोत्पत्ति से वंचित करने के प्रस्ताव से उनकी वैयक्तिक स्वतंत्रता पर हस्तक्षेप को सुनकर आपे से बाहर हो जाते हैं। समाज ने कुछ मनुष्यों की स्वतंत्रता छीनना आवश्यक समझा है, किन्तु उनके सम्बन्ध में हम स्वतंत्रता छीनना आवश्यक समझा है, किन्तु उनके सम्बन्ध में हम स्वतंत्रता छिनने की कोई शिकायत नहीं सुनते। यदि बटुवे को चुराने वाले या घोड़े इत्यादि वस्तुओं को चुराने वाले को कानून द्वारा रोकने की आवश्यकता है तो क्या उस मनुष्य को रोकने की आवश्यकता नहीं है जो सारे परिवार के रक्त को विष युक्त कर पुश्तों तक सारे वंश को विषमय बना देता है?

"इस समय की सब से बड़ी एक आवश्यकता यह है कि विवाह सम्बन्धी सब सच्चाईयों की शिक्षा देकर स्त्रियों में जागृति उत्पन्न की जाय।" यत: सब से अधिक हानि स्त्रियों को ही पहुंचती है

इसलिए एक बार पता लग जाने पर अपनी शारीरिक रक्षा के लिए वे अपने भावी वरों से उत्तम स्वास्थ्य का प्रमाण अवश्य मांगा करेगी। सन्तानों का सम्पूर्ण भविष्य स्त्रियों पर ही अवलम्बित है और उन्हीं की हाँ, वा, ना पर विवाह का फैसला होता है, इसलिये सन्तान में होने वाले गुण और अवगुणों का निश्चय उन्हीं के हाथ में है। युवा कुमारियों को यह अनुभव कर लेना चाहिए कि नष्ट चरित्र या दुराचारी युवक वास्तव में शारीरिक स्वास्थ्य का स्वामी नहीं होता ओर अपनी भावी पत्नी और सन्तान के लिए भयानक सिद्ध होता है, चाहे उपन्यास उसका कैसा ही मनोरंजक और कल्पित चित्र क्यों न खींचे।"

आर्य जाति की दशा, अमेरिका की दशा से अधिक भयानक है। भेद केवल इतना है कि उनकी आंखें खुली हुई है और हम अपनी दशा पर कुछ विचार नहीं करते। जिस भयानक राजरोग को समझकर अमेरिका ने उसकी चिकित्सा प्रारम्भ कर दी है उसको हमारे पूर्वजो ने अनुभव किया था और इसीलिये ऐसी आश्रम व्यवस्था स्थापन की कि रोग जाति से सदा दूर रहता था। ब्रह्मचर्याश्रम की स्थिति इसीलिये थी कि बालक बालिकाओं के गृहस्थकाल उपस्थित होने तक उन्हें सच्चे गृहस्थ के योग्य बनाया जावे। आर्य जाति के बच्चे आज 20 वर्ष की आयु तक जिन शक्तियों को नष्ट कर देते हैं उनकी रक्षा का पूरा प्रबंध गुरुकुलों में होता था। जो गिरता था उसे भी आचार्य जानता था और जो नहीं गिरता था उसे भी जानता था। आर्यों का राज्य, शासन और जनता की सम्मिलित सम्मति ही ऐसी थी कि आचार्य की आज्ञा लिये बिना जो युवक विवाह के पवित्र सम्बन्ध के लिये आतुर होता उसे कोई भी ब्रह्मचारिणी स्वीकार करने के लिए तैयार न होती थी। भगवान मनु लिखते हैं-

गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि।
उद्वहेत द्विजो भार्या सवर्णां लक्षणान्विताम्।

"गुरु की आज्ञा ले स्नान और यथा विधि समावर्तन करके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य (द्विज) अपने वर्णानुकूल सुन्दर लक्षण युक्त कन्या से विवाह करें।"

उस समय गुरु की आज्ञा का बन्धन ऐसा दृढ़ था, जिसका मुकाबला आज कल के बड़े से बड़े राजनियम भी नहीं कर सकते।

आर्य जाति की कन्याओं में इस समय पूर्ण जागृति उत्पन्न करना कठिन है। लाखों में कोई ऐसी विरली विदुषी निकलेगी जो संस्कारों के उच्च तत्व को समझ सके। इनके द्वारा इस रोग को दूर करना कठिन है जो इस समय फैल रहा है। विषयासक्त पुरुष, स्त्रियों को केवल विषय भोग का साधन समझते हुए अपंग निर्बल सन्तान उत्पन्न कर रहे है। अबोध बालक भयंकर रोगों से पीड़ित हो रहे हैं, कोई पूछने वाला नहीं है। पिपासाकुल कोई बनिये का लड़का यदि चमार के घड़े का पानी पी ले तो उसे बिरादरी से पृथक् कर दिया जाता है, वह पैतृक सम्पत्ति से वंचित कर दिया जाता है। परन्तु यदि वही लड़का हुक्के

की जहर चढ़ा और शराब के कनस्तर लुटा कर अपनी धर्मपत्नी को विषमय करने के अतिरिक्त पागल सन्तान उत्पन्न करता है तो उसे पैतृक सम्पत्ति से अलग करने का किसी को साहस नहीं होता।

भारत के नवयुवकों! आर्य जाति के पुत्रो! क्या तुमने कभी सोचा है कि तुम अपनी जाति को किस रसातल में पहुँचा रहे हो। विदेशियों से शिक्षा लेकर तुमने अपने स्रोत को ही भुला दिया है।तुम अपने आपको देश भक्त कहते हो, भारत को माता पुकारते हो, 'वन्दे मातरम्' के नाद से अन्तरिक्ष को व्याप्त कर देते हो तो क्या तुम्हारी कर्त्तव्य परायणता की पराकाष्ठा हो गई? जितनी अंगहीन, निर्बल, रोगग्रस्त सन्तान उत्पन्न हो रही है, माता का दु:ख, दिन-रात उतना ही बढ़ता जाता है। **तुम्हारे अन्दर के नेत्र यदि खुले होते और तुम माता के मलिन मुख को देख सकते तो तुमको निश्चय हो जाता कि माता की सन्तान का नाश करने वाले, माता के पुत्र नहीं हो सकते।**

आर्य युवको! जरा विचार तो करो कि शास्त्रार्थ या वाद विवाद में अन्य मतावलम्बियों को चुप करा देना ही वैदिक धर्म की ठीक सेवा है? प्राचीन आचार्यों का अभाव है और नवीन आचार्यों के पास अधिकार नहीं। **क्या तुम्हारी सम्मिलित शक्ति आर्य युवकों के लिये आचार्यका काम नहीं दे सकती?** मैं जानता हूं कि जब कोई आर्य युवक 24 वर्ष की आयु से पहले विवाह करता है तो तुम अपने अमल से उसे बतला देते हो कि उसने बुरा काम किया है। मैं चाहता हूं कि तुम अपने संगठन को अधिक विस्तृत तथा दृढ़ करो। आर्य कुमार सभाओं में बूढ़े और गृहस्थ दखल देना छोड़ दे। इन सभाओं के संगठन से एक भी अविवाहित युवक अलग न रह जाय। अपना मुख्य नियम यह बना लें कि मद्यादि मादक द्रव्यों (तम्बाकू सहित) का सेवन और मांस भक्षण करने वाले उन की सभा के सभासद न बन सकेंगे। सब यह प्रतिज्ञा करें कि उन में से कोई विवाह न करेगा जब तक कि विवाह से एक वर्ष पहिले सर्व प्रकार के छोटे-छोटे व्यसनों से भी मुक्त न हो लेगा। प्रत्येक प्रतिज्ञा करे कि यदि उसको कोई भी बीमारी होगी।(चाहे कितनी छिपी हुई क्यों न हो), तो वह विवाह करने से इन्कार कर देगा। प्रमेह रोग में ग्रस्त तथा अन्य रोगों से पीड़ित स्वार्थवश यह समझ लेते हैं कि विवाह से उनके यह रोग दूर हो जायेंगे। परन्तु यह भारी भूल है। परन्तु यदि यह सम्भव भी हो तो एक स्वस्थ देवी के शरीर और मन को नाश करना पिशाचत्व से कम नहीं समझा जाना चाहिए। आर्य युवको! यदि तुम्हारे नियमों के विरुद्ध कोई भी युवक (चाहे तुम्हारी सभा का सभासद हो या नहीं) विवाह करना चाहे तो उससे प्लेग की तरह बचो। उसका ऐसा बहिष्कार करो कि वह फिर अगुवा बन कर समाज में न बैठ सके। **इस पवित्र कर्त्तव्य के पालन से तुम भारत माता के ऋण से उऋण हो सकोगे।**

७०.हम तुझे, तू हमें

-डॉ. रामनाथ वेदालंकार

वयमिन्द्र त्वायवो, हविष्मन्तो जरामहे।

उत त्वमस्मयुर्वसो ।। ऋग् ३.४१.७

ऋषि: विश्वामित्र: । देवता इन्द्र: । छन्द: गायत्री।

(इन्द्र) हे परमात्मन्! **(त्वायव:)** तुझसे प्रीति करने वाले **(वय)** हम **(हविष्मन्त:)** प्रशस्त हवियों से युक्त [होकर] **(जरामहे)** [तेरी] अर्चना करते है। **(उत)** और **(वसो)** हे निवासक! **(त्व)** तू **(अस्मयु:)** हमसे प्रीति करने वाला [हो]

संसार में सभी मनुष्य किसी न किसी वस्तु की कामना करते है। एक महात्मा ने एक बड़े जन-समुदाय से अपनी अपनी इच्छा के अनुरूप वर मांगने के ए कहा। किसी ने सोने की हवेली मांगी, किसी ने खेतों की हरियाली मांगी, किसी ने व्यापार में असीम लाभ मांगा, किसी ने शत्रु विजय मांगी, किसी ने विक्रम मांगा, किसी ने विद्या मांगी, किसी ने धर्माचरण मांगा, पर जो सब धनों का धन है और जिसके मिलते ही सब धन अपने आप खिंचे चले आते हैं, उस इन्द्र प्रभु को किसी ने न मांगा। पहले हम भी सांसारिक सम्पत्तियों को ही सम्पत्ति समझते थे, और उन्हें पाने को लालायित रहते थे। पर अब तो हमें इन्द्र प्रभु को पाने की लालसा लग गई है। हम उसी की कामना कर रहे हैं, उसी से प्रीति जोड़ रहे हैं।

हे इन्द्र! परमैश्वर्यशालिन्! हे वीरता के देव! हमारे अन्दर झाँककर देखो, हमारे हृदयों में तुम्हारे प्रति प्यार उमड़ रहा है, हम तुम्हारी अर्चना कर रहे हैं। हम जानते हैं पत्र, पुष्प, फल, पंचामृत आदि वस्तुएँ तुम्हें तृप्ति प्रदान करने वाली नहीं है। अत: उन भौतिक वस्तुओं का उपहार लेकर हम तुम्हारे पास नहीं आते, किन्तु भक्ति-भाव की रस-भीनी प्रशस्त हवियों से ही हम तुम्हारी परिचर्या करते हैं। ये हमारी हवियाँ, दम्भ, दर्प, अहंभाव आदि से दूषित नहीं, अपितु सर्वात्मना निर्मल और शुद्ध हैं। तुम शुद्ध को हम अपने अन्तरात्मा की शुद्ध हवियाँ समर्पित करते हैं। इस तुच्छ भेंट को हे प्रभु! तुम स्वीकार करो।

हे आराध्य देव! हमारा छोटा-सा भावभीना उपहार तुम्हें स्वीकार हुआ या नहीं, इसकी पहचान यह है कि हमारी प्रीति के प्रत्युत्तर में तुम भी हमसे प्रीति करने लगे हो या नहीं। हमारी ओर से पूजा-अर्चना के होते हुए भी यदि तुम हममें कोई रुचि नहीं ले रहे, हमारी ओर से उदासीन हो, तो हम समझेंगे कि हमारी पूजा में ही कोई त्रुटि है। हमारे स्रोत हमारे पूजा-गीत शायद अन्तस्तल से निकले हुए नहीं हैं। अतएव वे तुम्हें नहीं रिझा पा रहे। हे हमारे अधिष्ठातृदेव! हम तुम्हें हृदय की पूर्ण शुचिता के साथ अपना भक्ति-रस का उपहार अर्पित कर रहे हैं। हम तुम्हें प्यार कर रहे हैं, तुम भी हमें प्यार करो। हम तुम्हें भक्ति-रस से नहला रहे हैं, तुम हमें अपने आनन्दरस से नहलाओ। हे वसो! तुम निवासक हो, हमें निवास प्रदान करो।

-वेदमंजरी से

(गतांक में आर्यसमाज के मूर्धन्य विद्वान श्री पंडित हरिश्चंद्रजी विद्यालंकार प्रणीत महर्षि दयानंद सरस्वती के सचित्र प्रामाणिक जीवन चरित्र में स्वामी दयानन्द की अज्ञात जीवनी के बारे में पढ़ा। इस अंक में पढ़ें कि किस प्रकार महर्षि के प्रादुर्भाव के समय देश में धार्मिक धांधली की रूप में धर्म के तीनों अंगों– ज्ञान, कर्म तथा उपासना को अज्ञान, पुरुषार्थहीनता तथा दुराचार से प्रतिस्थापित कर दिया था! हिन्दूसमाज किस प्रकार सामाजिक कुरीतियों से समाज के स्थान पर बिखराव का साक्षात् रूप बन चुका था। : – संपादक)

महर्षि दयानंद सरस्वती–६

लेखक: श्री पंडित हरिश्चंद्र जी विद्यालंकार

अध्याय ३–

भयंकर दुरवस्था(संवत १९०३से१९१७तक)

धार्मिक धांधली

मतमतान्तरों का अद्भुतालय: –जिस समय ऋषि दयानंद ने कर्म क्षेत्र में पग रखा, उस समय भारतवर्ष की धार्मिक, सामाजिक व राजनैतिक अवस्था कैसी थी–इसका अनुमान वर्तमान अवस्था को देखकर लगाना कठिन है। उस समय आर्य जाति गाड़ निद्रा में पड़ी हुई थी। आलस्य, प्रमाद,अज्ञान तथा पौरुष का अभाव इतनी पराकाष्ठा तक पहुँच चुका था कि आर्य जाति को ललकार कर, ठोकरें मार कर, घंटे का उच्च घोष सुनाकर जगाने की आवश्यकता थी। उसे आराम–विस्मृति की अवस्था से निकाल चैतन्य बनाने की आवश्यकता थी। आर्यधर्म जड़ता, रूढ़िवाद तथा निरर्थक क्रियाकलाप का बदबूदार पोखर बन गया था। जिस प्रकार भगवती भागीरथी का पवित्र, शीतल और मधुर जल लंबा मैदानी मार्ग पारकर गंदे नदी नालों के संपर्क से हुगली में मलिन, दूषित तथा अपेय हो जाता है तथा उस जलधारा से पृथक गड्ढे में एकत्र हुए जल राशि गतिशून्य हो जाने के कारण सड़ांध पैदा करने लगती है और उसमें नाना प्रकार के कृत्रिम कीट पैदा हो जाते हैं, ठीक यही अवस्था हमारे आर्य (हिंदू) जगत की हो चुकी थी। शुद्ध वैदिक धर्म का लोप हो चुका था। वेदों का पढ़ना पढ़ाना सर्वथा समाप्त हो चुका था। यद्यपि बड़े–बड़े पंडित वेदों के प्रति अगाध श्रद्धा तथा भक्ति की भावना रखते थे, परंतु उनके अध्ययन में न उनकी रूचि रही और न उन्हें साहस ही होता था। पुराणों, स्मृतियों गृह्यसूत्रों तथा विविध भाष्यों तक ही उनका पांडित्य सीमित था। साधारण जनता तो वेदों के नाम से ही सर्वथा अपरिचित थी। भागवत पुराण आदि की कथा सुनने में तथा घंटा घड़ियाल बजाने में ही उसका धर्म समाप्त हो जाता था। वैदिकधर्म वैष्णव, भौव तथा साक्त संप्रदायों में बँट चुका था। इन सम्प्रदायों के भी अनेक भेद उपभेद बन गए थे। वे परस्पर एक दूसरे की निंदा करके अपने श्रेष्ठता

सिद्ध करने तथा नाना प्रकार के बाह्य आडम्बरों, तिलक, पूजा–पाठ क्रिया के भेद बनाए रखने में ही अपना अस्तित्व समझते थे। इस भावना के कारण स्थान स्थान पर अनेक मत, देवालय तथा मंदिर आदि बन गए थे जो देवदासी प्रथा आदि के रूप में अनाचार के गढ़ थे। जैन धर्म अपनी अहिंसा की सच्ची भावना का परित्याग कर कायरता, विडंबना तथा निष्कर्मण्यता का शिकार बन गया था। सिख धर्म के महंत भी बड़े–बड़े मठ कायम करने की धुन में मस्त थे! कहॉ तक वर्णन किया जाए! उस समय का हिंदू समाज का एक विलक्षण अद्‌भुतालय बना हुआ था। जो उठाता, दो चार दोहे या श्लोक गाकर लोगों को दीक्षा देने लगता! एक कुटिया बना, भस्म रमा, कण्ठी धारण करा धर्म के नाम से लोगों को ठगता था और अंत में अपनामठ तैयार कर शिष्य परंपरा चला जाता था। इस प्रकार धर्म के नाम से जायदादें खड़ी की जाने लगी! सच्चे धर्म का उपदेश दे सकने की क्षमता ना हो सकने के कारण मूर्तिपूजा का आश्रय लेकर हिंदू जनता की भक्ति भावना की तृप्ति की जाने लगी! यह मूर्तिपूजा हमारे धर्म के नाश तथा विविध पोपलीलाओं व बाह्य आडंबर की आधारशिला थी।

धर्म सर्वथा दूषित था: –धर्म के तीनों अंग–ज्ञान, कर्म तथा भक्ति सर्वथा बिगड़ चुके थे। स्वामी शंकराचार्य का चलाया हुआ नवीन अद्वैतवाद आम जनता व कलुशित आत्माओं में पहुँचकर हमारे जीवन की निष्कर्मण्यतातथा पापवासना का महान कारण बन रहा था।'अहम् ब्रह्मास्मि' कहकर गृहस्थ साधु अपने आप को पाप–पुण्य से ऊपर समझने लगे थे। कर्मकांड के लिए यज्ञ में पशु–हिंसा, देवी–देवताओं की मूर्तिपूजा तथा उनके लिए पशुबलि चढ़ाने के अतिरिक्त कुछ कर्तव्य कर्म शेष ना रहा। आचार अनाचार में, पाप पुण्य में, अच्छे बुरे में भेद जाता रहा! केवल गंगा, श्रीकृष्ण या विष्णु का नाम जपने मात्र से पाप क्षय समझा जाने लगा! भक्तिमार्ग तो सर्वथा दूषित हो चुका था। वैष्णव लोग श्रीकृष्ण के नाम से खुलेआम अनाचार का प्रचार कर रहे थे! उनास्य–उपासक में पिता–पुत्र की पवित्र भावना की प्रधानता न रहकर पति–पत्नी की भावना का– घोर श्रृंगारमय वासना का अंकुर फूट रहा था! यह घोर अंधकार, तीव्र प्रतारणा, आत्म प्रवंचना तथा छल छद्‌म का भयंकर साम्राज्य! कैसी दुरवस्था थी! कितना अनर्थ था!धर्मक्षेत्र में धांधली मची हुई थी।

सामाजिक निर्बलता

इस्लाम का प्रभाव: – जाति की इन अपनी आंतरिक निर्बलताओं के अतिरिक्त मुसलमानों का भी हमारे जीतीय जीवन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ चुका था। मुसलमान बादशाह तलवार के जोर से भारतवर्ष में इस्लाम का प्रचार करना चाहते थे। वे तलवार के जोर से हमें राजनीतिक पराधीनता में तो जकड़ सके, परंतु धर्म परिवर्तन कराने में सफल न हो पाए! क्योंकि भारत वर्ष में आरंभ से ही अपने धार्मिक संगठन को समय अनुकूल परिवर्तित करके

आत्मरक्षा के लिए सन्नद्ध कर दिया था। परंतु निर्बलों का असहयोग शस्त्र परिणाम में आर्य जाति के लिए विशेष गुणकारी सिद्ध न हुआ। किले में बंद सेना की तरह उसमें आलस्य व फूट का बीज उगने लगा। साथ ही इस्लाम से अपने आप को बचाने के लिए सतीप्रथा, पर्दा, खानपान के बंधन, जाति पांति केकड़े विभाग, बालविवाह तथा छूतछात आदि की जो दीवारें खड़ी की गईं, उनसे जाति का अपनी उन्नति का मार्ग भी बंद हो गया! परिणामतः हमारा सामाजिक जीवन इतना निर्बल व सच्छिद्र हो गया कि मुसलमानी राज्य की समाप्ति के बाद भी हजारों हिंदू अपने भाइयों के इन बंधनों से पीड़ित होकर हिंदूसमाज का परित्याग कर किसी अन्य समाज में मिलने के लिए उत्सुक हो रहे थे। जाति बहिष्कार की प्रथा ने कुछ भाइयों को इस्लाम के बाड़े में प्रविष्ट होने के लिए बाधित कर दिया था। पीछे वही भाई इस अत्याचार के कारण हिंदू समाज के शत्रु बन गए। शास्त्रों पर अगाध श्रद्धा रखने वाले अनेक भाई अपने स्थान पर सुख अनुभव नहीं कर रहे थे। हिंदू समाज उन्हें एक कारागार प्रतीत हो रहा था। वे किसी ऐसे महापुरुष की प्रतीक्षा में थे जो इन्हें बंधनों से मुक्त कर सच्चे आर्यधर्म की ज्योति दिखा सकें और उत्तम जीवन प्रदान कर सकें। गर्भविवाह, बालविवाह तथा वृद्धविवाह का दौर दौरा था। पूरी आयु में तो विवाह का एक उदाहरण मिलना भी कठिन था। अपनी ही जाति के छोटे वर्गों पर, अंत्यजों पर, ब्राह्मणों व सवर्णों द्वारा सामाजिक अत्याचार किए जाने लगे। उनके साथ खानपान, विवाह संबंध तथा पठन–पाठन छूट गया था। उन्हें देवदर्शन व कुओं पर पानी भरने से भी वंचित कर दिया गया था। वे दलित व पीड़ित अंत्यज लोग हिंदू समाज में रहते हुए पूरे बंदी थे, दुखित थे तथा अत्याचार पीड़ित थे।

ईसाई मत का प्रवेश: –इन बंधनों से तंग आकर हिंदू जाति स्वयं अपना धर्म छोड़ने के लिए उत्सुक बैठी थी। परंतु मुसलमानों के प्रति घृणा हो जाने के कारण स्वेच्छा पूर्वक इस्लाम स्वीकार करने को तैयार न थी। मुस्लिम राज्य के अधःपतन के साथ भारत वर्ष में यूरोप की जातियों के साथ ईसाइयत का प्रवेश हुआ। इसने शांत परंतु गहरे व पेचदार उपायों से हिंदू समाज में घुसना आरंभ किया। भारत में अंग्रेजों का प्रभुत्व और ईसाईयत एक दूसरे के सहायक थे। पश्चिमी सभ्यता का आकर्षक रूप इन दोनों का सहायक बना! हिंदू समाज का पीड़ित वर्ग तो अपने भाइयों से सताया हुआ था ही,ईसाईयतकी ओर से इस वर्ग को आर्थिक प्रलोभन भी मिला। शिक्षणालयों के जाल में उच्चवर्ग के भारतवासी भी फॅस गए। सरकारी नौकरी का प्रलोभन भी साथ लगा हुआ था! धीरे–धीरे ईसाई काल में कबीर भी पैदा होने लगे। उन्होंने हिंदूधर्म की रक्षा के लिए ईसाइयत की शरण ली और हिंदूपन में ईसाईयत की कलम लगाकर दोनों धर्मों का एकीकरण करना चाहा। सर्वप्रथम बंगाल में ब्रह्मसमाज के रूप में इस प्रयत्न का परिणाम प्रकट हुआ। इधर पाश्चात्य शिक्षा के साथ–साथ नास्तिकता ने भी भारत में प्रवेश किया। पोपकालीन ईसाई धर्म के पाप, छल–कपट तथा अत्याचारमय होने के कारण यूरोप में धर्म व ईश्वर के प्रति अविश्वास एवं

विज्ञान की सर्वशक्तिमत्ता के प्रति गहरा विश्वास जड़ जमा रहा था। भारत में यह लहर धर्म के प्रति अनास्था एवं नास्तिकता उत्पन्न कर रही थी।

राजनैतिक क्रान्ति–काल

निर्विवाद सत्यः –राजनीतिक दृष्टि से तो यह निर्विवाद क्रांति–काल था। मुगलों का प्रभुत्व हट रहा था, पर अंग्रेजों का अभी स्थापित नहीं हो पाया था। डकैती, चोरी, नर–हत्या, ठगी आदि अत्याचारों से भारत की प्रजा में त्रास फैला हुआ था। ऐसी राजनीतिक अस्थिरता के समय आर्थिक दुरवस्था का होना सर्वथा स्वाभाविक ही था। बार–बार के दुर्भिक्षों से प्रजा पीड़ित थी। अनाथों और भिखमंगो की बढ़ोतरी हो रही थी। जीविका के साधन घट रहे थे। कला–कौशल के अभाव में देश परमुखापेक्षी बना जा रहा था।

हमारी इस सारी दुरवस्था का कारण चाहे सैकड़ों वर्षो की राजनीतिक पराधीनता ही क्यों ना रही हो, परंतु इस समय की सबसे बड़ी आवश्यकता आंतरिक सुधार के श्रीगणेश की थी। सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के रुप में क्रांति के जो चिह्न प्रकट हुए थे उनसे देश के नए शासकों का ध्यान शासन–सुधार की ओर आकर्षित हो ही गया था। इस परिवर्तित वातावरण से लाभ उठाने की नितांत आवश्यकता थी।

परिस्थिति अनुकूल भी और प्रतिकूल भीः–सुधारकों के लिए यह परिस्थिति किसी सीमा तक अनुकूल भी थी और प्रतिकूल भी। महारानी विक्टोरिया की धार्मिक स्वतंत्रता की घोषणा के कारण अंग्रेजों के प्रति जनता का विश्वास बढ़ रहा था।

पुरानी अराजकता के सम्मुख यह राज्य एक दैवीय देन समझा जा रहा था। ऐसे समय सुधारकों का निर्भय होना और उनको अनुयायियों का मिलना पहले अराजक समय की अपेक्षा एक प्रकार से आसान भी था, यद्यपि ऋषि दयानंद जैसे निर्भय सुधारक मुसलमानी राज्य के समय होते तो भी वे किसी शिवाजी की पीठ पर हाथ रखकर वैदिक धर्म की विजय दुंदुभी बजा देते। वह अवस्था निश्चय ही कुछ अधिक संघर्ष की होती, परंतु जहाँ यह अवस्था थी, वहाँ विदेशी दासता के प्रभाव से नई संतति में ईसाइयत, विदेशी सभ्यता, भाषा और देश की जो मानसिक गुलामी उत्पन्न हो गई थी वह दयानंद जैसे प्राचीन वैदिक धर्म, सभ्यता व संस्कृति के पुजारी के मार्ग में बड़ी भारी रुकावट थी। महर्षि ने आगे चलकर स्वयं अनुभव किया कि स्वायत्त शासन ना होने के कारण हम सुधार करने में अशक्त हैं। यह भाव उन्होंने नेपाल के स्वामी कृष्णानंद को लिखे पत्र में व्यक्त किए थे। परंतु कार्य क्षेत्र में अवतीर्ण होने के उन दिनों में उन्हें अंग्रेजों की न्यायप्रियता पर साधारण जनता की भाँति पूर्ण विश्वास था। हम उन्हें सन् 1866 के मई मास में अजमेर में मेजर डेविडसन, कमिश्नर और असिस्टेंट कमिश्नर कर्नल बुक से गौ हत्या बंद करवाने के संबंध

में भेंट करता पाते हैं।

सारांश यह है कि भारत की तत्कालीन परिस्थिति का हम यों उल्लेख कर सकते हैं: –

१. प्राचीन वैदिक धर्म अत्यंत संकीर्ण बन गया था। वह नाना मतमतांतरों में बँट चुका था और वे मत परस्पर एक दूसरे का विरोध कर रहे थे। धर्म के तीनों अंग ज्ञान, कर्म तथा भक्ति सर्वथा बिगड़ चुके थे।

२. धर्म विस्तार की प्राचीन भावना का परित्याग करके आत्मरक्षार्थ किए गए बालविवाह, सती प्रथा, जाति बहिष्कार आदि उपायों ने हिंदू समाज को निस्तेज करके अनेक सामाजिक कुरीतियों के गड्ढे में धकेल दिया था।

३. समाज के अत्याचारों से पीड़ित एवं पेशेवर नौकरी के लोभ से अभिभूत दलित जाति के लोग धर्म का परित्याग करके इस्लाम और ईसाइयत को कबूल कर रहे थे।

४. ईसाइयों के शांत उपायों के कारण अनेक शिक्षित लोग शनैः शनैः अपना धर्म छोड़कर स्वेच्छा पूर्वक ईसाई धर्म को ग्रहण कर रहे थे।

५. हीनतावृत्ति (Inferiority Complex) के कारण कुछ सुधारक ईसाइयत की कलम लगाकर नए रूप में धर्म को जीवित रखना चाहते थे। ब्राह्मसमाज, प्रार्थन समाज आदि इसी प्रवृत्ति के परिणाम थे।

६. नव शिक्षकों में नास्तिकता बढ़ रही थी। धर्म का विचार तक उन्हें असह्य को उठा था। आर्थिक व्यवस्था और शिल्प कला के अभाव में बेकार व अनाथों की संख्या बढ़ रही थी। राज्य आश्रय के कारण ईसाई इस अवस्था से लाभ उठा रहे थे।

७. नए शासन की धार्मिक स्वतंत्रता की घोषणा सुधार के लिए आशा की सुनहरी किरण थी। इससे लाभ उठाना दूरदर्शिता पूर्ण कार्य था।

ऋषि दयानंद को अपने परिभ्रमण के तेरह चौदह वर्षों में इन बातों का पग पग पर अनुभव हुआ। वह घर से अमृत की खोज में निकले थे। सत्य और अमृत के अभिलाषी ने देखा : –आज समूचा संसार विशेषता सत्य ज्ञान वेद की अनुयायिनी आर्यजाति पथभ्रष्ट हो कर मृत्यु के मुख में चली जा रही है। उसने (महर्षि दयानन्द सरस्वती महाराज ने – सं0) अपनी मुक्ति और ब्रह्मानंद को छोड़कर इस जाति की डूबती नैया की पतवार संभाली।

प्रश्न–क्या परमेश्वर का बार–बार नाम लेने से कुछ लाभ होता है ?

उत्तर– नाम स्मरण मात्र का कोई लाभ नहीं है । जैसे मिसरी मिसरी कहने से मुँह मीठा और नीम नीम कहने से कडवा नहीं होता । चाखने से ही मीठा या कड़वा होता है । ऐसे ही वाणी से नामस्मरणमात्र से कुछ फल नहीं मिलता ।

दयानंद कौन है
(प्रजातन्त्र का मन्त्रदाता)

धरा पर जब मानवजाति का अवतरण हुआ तब कोई राजा बनकर अवतीर्ण नहीं हुआ था। सृष्टि के आरंभ में परमात्मा प्रदत्त वेद के अध्ययन से मार्गदर्शन पा सर्वाधिक योग्य उपलब्ध मनुष्यों की समिति और समिति के सभापति के रूप में राजा का चुनाव हुआ होगा। अर्थात् मानव समाज ने सुव्यवस्था सुनिश्चित करने के लिए एक तंत्र के अधीन अपना राजा निर्वाचित कर उसके अधीन हो उसकी प्रजा बनना स्वीकार किया। यह तंत्र एक सुदृढ़ परस्परतंत्र है। इस प्रकार प्रजा नाम सापेक्ष वस्तु का है, जिसके लिए राजा की अपेक्षा होती है। राजा ही प्रजा को तंत्र में बांधकर रखने के लिए प्रजा द्वारा ही नियत किया जाता है।

धरा पर ज्ञान का प्रवाह वेद के प्रादुर्भाव के देश भारत से शेष विश्व में हुआ है। ज्ञान के स्रोत के रूप में ही भारत ने सम्पूर्ण विश्व पर मानव सृष्टि से लेकर सवा पाँच हजार वर्ष पूर्व तक राज्य किया है। किन्तु महाभारतकाल के पश्चात् जब वेद के प्रादुर्भाव के देश भारत के लोग ही वेद से दूर हो चले तो शेष विश्व का तो कहना ही क्या?

विश्व ने तानाशाही, लोकतंत्र, प्रजातंत्र, साम्राज्यवाद, कबीलावाद, साम्यवाद, पूँजीवाद, समाजवाद, केन्द्रित, विकन्द्रित, संघीय, सामन्ती, पारिवारिक आदि कई राज्यप्रणालियाँ और सत्ताएँ देख ली, किन्तु सर्वहितकारी कोई भी नहीं है।

परिणाम यह है कि एक राज्य या राष्ट्र के लोग अपने राज्य या राष्ट्र से संतुष्ट नहीं है। एक भी राष्ट्र दूसरे किसी भी राष्ट्र से संतुष्ट नहीं है। अधिकांश व्यवस्थाएँ अपने राष्ट्रों को अविकसित से आगे नहीं बढ़ा सकी है। शेष विकासशील या विकसित की श्रेणी में आने के बाद मानवीय मूल्यों की दृष्टि से बहुत निचले पायदान पर है। विश्व में व्यक्तिगत से लेकर राष्ट्रीय सुरक्षा प्रत्येक कोने में आशंकित और संकट में है। जर्मनी के विभाजन और एकीकरण, कोरिया विभाजन से बने दोनो कोरिया में बड़ती दूरियाँ, अमेरिका और ब्रिटन में विपरीत विचारों वाले दलों द्वारा एक दूसरे को विस्थापित करने, लेनिन द्वारा सोवियत संघटन और गोर्बाचेव द्वारा विघटन, मुस्लिम राष्ट्रों में अशान्ति और आंतरिक व परस्पर युद्धों की निरंतरता आदि वर्तमान सभी राज्यतंत्रों के अधूरेपन के प्रमाण है।

महाभारत के बाद जैन राज्यों की तो समाप्ति हो गई। बौद्ध मत के निर्यात असैनिक रूप से हुआ और भारत के वैदिक कालीन इतिहास के प्रकाश में इसे विश्व में सम्मान मिला और बीसियों राष्ट्रों ने इसे अपना लिया। विश्व ने वैदिक व्यवस्था के अस्ताचलगामी होने पर उपजे कबीलावाद ने ईसाई और मुस्लिम कबीलों के आपसी झगड़े भी देखे, ईसाईयत का सदा सूर्ययुक्त बोलबाला भी देखा और इस्लाम की रक्त और सम्पदा पिपासु शमशीर भी देखी। मध्यकाल से प्रचलित पूंजीवाद भी देखता रहा और साम्यवाद के हिचकोले खाते

जहाज को भी देख रहा है। सभी तो असफल हैं। कोई आशा की किरण?

किरण तो है! किन्तु लोगों ने उसकी ओर पीठ कर रखी है। क्षीण यह होती नहीं। किन्तु मुख तो इसकी ओर करना पड़ेगा। यह किरण जिसने दिखाई, उसने अपने समय उस साम्राज्य की कमियाँ भी बतायीं, जिसमें सूर्य कभी अस्त नहीं होता था। अतः उसकी बातों को मानना तो पड़ेगा। ये आशा और सुदृढ़ राज–तंत्र की किरण दिखाने वाले महापुरुष ही है, सर्व हितकारी, विश्वकल्याण की शिल्पी महर्षि दयानन्द सरस्वती महाराज!

वैचारिक विरोध से वैमनस्य, अशान्ति और युद्ध होता है। ज्ञान और इसके स्तरों की भिन्नता ही वैचारिक विरोध का कारण बनती है। सबको ज्ञान प्राप्ति के साधन सुलभ हों, व्यष्टि से समष्टि को उदात्त बनाने के साधन उपलब्ध हों तो वांछित तंत्र भी मिलेगा और सफल भी होगा। ऐसे तंत्र बताने वाले महर्षि दयानन्द सरस्वती की एक रचना 'सत्यार्थप्रकाश' में इसकी जो झलकियाँ मिलती हैं, उनमें से कुछ प्रस्तुत है: –

महर्षि स्वामी दयानन्दजी महाराज ने 'सत्यार्थप्रकाश' में जिन पारिभाषिक शब्दों के जो अर्थ मानकर प्रयोग किए हैं, उनको अंत में 'स्वमंतव्यामंतव्यप्रकाश' के रूप में संग्रहित किया है। राजा, प्रजा और इनके परस्पर संबंध में महत्वपूर्ण तंत्र के संबंध में तीन महत्त्वपूर्ण परिभाषाएँ हैं: –

"१७–**'राजा'** उसी को कहते हैं जो शुभ गुण, कर्म, स्वभाव से प्रकाशमान, पक्षपातरहित न्यायधर्म का सेवी, प्रजाओं में पितृवत् वर्त्ते और उन को पुत्रवत् मान के उन की उन्नति और सुख बढ़ाने में सदा यत्न किया करे।

१८–**'प्रजा'** उस को कहते हैं कि जो पवित्र गुण, कर्म, स्वभाव को धारण कर के पक्षपातरहित न्याय धर्म के सेवन से राजा और प्रजा की उन्नति चाहती हुई राजविद्रोहरहित राजा के साथ पुत्रवत् वर्त्ते।

१९–जो सदा विचार कर असत्य को छोड़ सत्य का ग्रहण करे, अन्यायकारियों को हठावे और न्यायकारियों को बढ़ावे, अपने आत्मा के समान सब का सुख चाहे सो **'न्यायकारी'** है; उस को मैं भी ठीक मानता हूँ।"

कल्याणकारी राज्य के लिए न्यायकारी तो राजा और प्रजा दोनों का होना अपरिहार्य है। शासक राजा कैसा हो, वेद के उद्धरण से बताते महर्षि लिखते हैं: –

"त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषाथः सदांसि।।ऋ० ३।३८।६।।

ईश्वर उपदेश करता है कि (राजाना) राजा और प्रजा के पुरुष मिल के (विदथे) सुखप्राप्ति और विज्ञानवृद्धिकारक राजा प्रजा के सम्बन्धरूप व्यवहार में (त्रीणि सदांसि) तीन सभा अर्थात् विद्यार्य्यसभा, धर्मार्य्यसभा, राजार्य्यसभा नियत करके (पुरूणि) बहुत प्रकार के (विश्वानि) समग्र प्रजासम्बन्धी मनुष्यादि प्राणियों को (परिभूषथः) सब ओर से विद्या,स्वातन्त्र्य, धर्म, सुशिक्षा और धनादि से अलंकृत करें।

एक को स्वतन्त्र राज्य का अधिकार न देना चाहिए किन्तु राजा जो सभापति

तदधीन सभा, सभाधीन राजा, राजा और सभा प्रजा के आधीन और प्रजा राजसभा के आधीन रहै। यदि ऐसा न करोगे तो–

जो प्रजा से स्वतन्त्र स्वाधीन राजवर्ग रहै तो (राष्ट्रमेव विश्या हन्ति) राज्य में प्रवेश करके प्रजा का नाश किया करे। जिसलिये अकेला राजा स्वाधीन वा उन्मत्त होके (राष्ट्री विशं घातुकः) प्रजा का नाशक होता है अर्थात् (विशमेव राष्ट्रायाद्यां करोति) वह राजा प्रजा को खाये जाता (अत्यन्त पीड़ित करता) है इसलिये किसी एक को राज्य में स्वाधीन न करना चाहिये। जैसे सिह वा मांसाहारी हृष्ट पुष्ट पशु को मार कर खा लेते हैं, वैसे (राष्ट्री विशमत्ति) स्वतन्त्र राजा प्रजा का नाश करता है अर्थात् किसी को अपने से अधिक न होने देता, श्रीमान् को लूट खूंट अन्याय से दण्ड लेके अपना प्रयोजन पूरा करेगा। इसलिये–

इन्द्रो जयाति न परा जयाता अधिराजो राजसु राजयातै। चर्कृत्य ईड्यो वन्द्यश्चोपसद्यो नमस्यो भवेह।।–अथर्व० कां० ६। अनु० १०। व० ६८। म० १।।

अर्थात् हे मनुष्यों! जो (इह) इस मनुष्य के समुदाय में (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य का कर्त्ता शत्रुओं को (जयाति) जीत सके (न पराजयातै) जो शत्रुओं से पराजित न हो (राजसु) राजाओं में (अधिराजः) सर्वोपरि विराजमान (राजयातै) प्रकाशमान हो (चर्कृत्यः) सभापति होने को अत्यन्त योग्य (ईड्यः) प्रशंसनीय गुण, कर्म, स्वभावयुक्त (वन्द्यः) सत्करणीय (चोपसद्यः) समीप जाने और शरण लेने योग्य (नमस्यः) सब का माननीय (भव) होवे उसी को सभापति राजा करें।"

वेद से प्रमाणित मनुस्मृति के उद्धरणों से महर्षि राजा और प्रजा के कर्त्तव्यों को लिखते हैं:

"सब सभासद् और सभापति इन्द्रियों को जीतने अर्थात् अपने वश में रख के सदा धर्म में वर्तें और अधर्म से हठे हठाए रहैं। इसलिये रात दिन नियत समय में योगाभ्यास भी करते रहैं, क्योंकि जो अजितेन्द्रिय कि अपनी इन्द्रियों (जो मन, प्राण और शरीर प्रजा है इस) को जीते विना बाहर की प्रजा को अपने वश में स्थापन करने को समर्थ कभी नहीं हो सकता।"

"**राज्ञो हि रक्षाधिताः परस्वादायिनः शठाः। भृत्या भवन्ति प्रायेण तेभ्यो रक्षेदिमाः प्रजाः।।** राजा जिन को प्रजा की रक्षा का अधिकार देवे वे धार्मिक सुपरीक्षित विद्वान् कुलीन हों उनके आधीन प्रायः शठ और परपदार्थ हरनेवाले चोर डाकुओं को भी नौकर रख के उन को दुष्ट कर्म से बचाने के लिये राजा के नौकर करके उन्हीं रक्षा करने वाले विद्वानों के स्वाधीन करके उन से इस प्रजा की रक्षा यथावत् करे।।"

इस व्यवस्था में अपराधियों को शासित कर सुधारने की प्रक्रिया भी इंगित है, जिस पर नहीं चलने के कारण आज तो अपराधी कारागारों से भी अपराध संचालित करते हैं। दण्ड व्यवस्था सुदृढ़ न होने से बन्दी बनने से कोई भय या लज्जा ही नहीं रही।

महर्षि ने उत्तम दण्ड व्यवस्था और उसके सुपरिणाम भी सत्यार्थप्रकाश में बताए हैं: –

"**स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता च सः।**
चतुर्णामाश्रमाणां च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः।।१।।

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति।
दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः।।२।।
समीक्ष्य स धृतः सम्यक् सर्वा रञ्जयति प्रजाः।
असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाशयति सर्वतः।।३।।
दुष्येयुः सर्ववर्णाश्च भिद्येरन्सर्वसेतवः।
सर्वलोकप्रकोपश्च भवेद्दण्डस्य विभ्रमात्।।४।।
यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति पापहा।
प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेत्साधु पश्यति।।५।।

जो दण्ड है वही पुरुष राजा, वही न्याय का प्रचारकर्त्ता और सब का शासनकर्त्ता, वही चार वर्ण और आश्रमों के धर्म का प्रतिभू अर्थात् जामिन है।।१।।

वही प्रजा का शासनकर्त्ता सब प्रजा का रक्षक, सोते हुए प्रजास्थ मनुष्यों में जागता है इसी लिये बुद्धिमान् लोग दण्ड ही को धर्म कहते हैं।।२।।

जो दण्ड अच्छे प्रकार विचार से धारण किया जाय तो वह सब प्रजा को आनन्दित कर देता है और जो विना विचारे चलाया जाय तो सब ओर से राजा का विनाश कर देता है।।३।।

विना दण्ड के सब वर्ण दूषित और सब मर्यादा छिन्न–भिन्न हो जायें। दण्ड के यथावत् न होने से सब लोगों का प्रकोप हो जावे।।४।।

जहां कृष्णवर्ण रक्तनेत्र भयंकर पुरुष के समान पापों का नाश करनेहारा दण्ड विचरता है वहां प्रजा मोह को प्राप्त न होके आनन्दित होती है परन्तु जो दण्ड का चलाने वाला पक्षपातरहित विद्वान् हो तो।।५।।"

विकृत हो चुकी व्यवस्था में शताब्दियों से सत्ताधारियों को दण्ड देने का सोचना भी दुष्कर रहा है। ऐसे ही प्रश्न प्रतिप्रश्न और उनके दिए महर्षि के उत्तर देखियेः –

"(प्रश्न) जो राजा वा राणी अथवा न्यायाधीश वा उसकी स्त्री व्यभिचारादि कुकर्म करे तो उस को कौन दण्ड देवे?(उत्तर) सभा, अर्थात् उन को तो प्रजापुरुषों से भी अधिक दण्ड होना चाहिये।(प्रश्न) राजादि उन से दण्ड क्यों ग्रहण करेंगे?(उत्तर) राजा भी एक पुण्यात्मा भाग्यशाली मनुष्य है। जब उसी को दण्ड न दिया जाय और वह दण्ड ग्रहण न करे तो दूसरे मनुष्य दण्ड को क्यों मानेंगे? और जब सब प्रजा और प्रधान राज्याधिकारी और सभा धार्मिकता से दण्ड देना चाहें तो अकेला राजा क्या कर सकता है? जो ऐसी व्यवस्था न हो तो राजा प्रधान और सब समर्थ पुरुष अन्याय में डूब कर न्याय धर्म को डुबा के सब प्रजा का नाश कर आप भी नष्ट हो जायें, अर्थात् उस श्लोक के अर्थ का स्मरण करो कि न्याययुक्त दण्ड ही का नाम राजा और धर्म है जो उस का लोप करता है उस से नीच पुरुष दूसरा कौन होगा ?"

महाभारतकाल और उसके पश्चात् भारत की हुई दुर्दशा को उपर्युक्त संदर्भ की